

Chapter तेरह

ध्रुव महाराज के वंशजों का वर्णन

सूत उवाच

निशाम्य कौषारविणोपवर्णितं

ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणम् ।

प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे

प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; निशाम्य—सुनकर; कौषारविणा—मैत्रेय से; उपवर्णितम्—वर्णित; ध्रुवस्य—ध्रुव का; वैकुण्ठ-पद—विष्णु-धाम को; अधिरोहणम्—आरूढ़ होना; प्ररूढ—बढ़ा हुआ; भावः—भक्तिभाव; भगवति—भगवान् के प्रति; अधोक्षजे—जो प्रत्यक्ष अनुभव से परे है; प्रष्टुम्—पूछने के लिए; पुनः—फिर; तम्—मैत्रेय को; विदुरः—विदुर ने; प्रचक्रमे—प्रयास किया।

सूत गोस्वामी ने शौनक इत्यादि समस्त ऋषियों से आगे कहा : मैत्रेय ऋषि द्वारा ध्रुव महाराज के विष्णुधाम में आरोहण का वर्णन किये जाने पर विदुर में भक्तिभाव का अत्यधिक संचार हो उठा और उन्होंने मैत्रेय से इस प्रकार पूछा।

तात्पर्य : जैसाकि विदुर तथा मैत्रेय की वार्ता से स्पष्ट है, भगवान् तथा उनके भक्तों के कार्यकलाप इतने मोहक होते हैं कि न तो वर्णन करनेवाला भक्त कहते अघाता है और न सुननेवाला भक्त प्रश्नोत्तरों से थकता है। दिव्य विषयवस्तु ऐसी रोचक होती है कि न तो कोई सुनते और न ही कहते थकान का अनुभव करता है। किन्तु जो भक्त नहीं हैं, वे सोच सकते हैं कि लोग केवल भगवान् की वार्ता में इतना समय कैसे लगा सकते हैं? किन्तु भक्त कभी भी भगवान् या उनके भक्तों के विषय में सुनते तथा कहते संतुष्ट होते या अघाते नहीं। वे जितना ही अधिक सुनते और कहते हैं उतना ही अधिक सुनने के लिए उत्साहित होते हैं। हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन केवल तीन शब्दों का बारम्बार उच्चारण है। ये शब्द हैं हरे, कृष्ण तथा राम, किन्तु भक्त लोग इस मंत्र का चौबीसों घंटे कीर्तन करते थकते नहीं।

विदुर उवाच

के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत ।

कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासत ॥ २ ॥

शब्दार्थ

विदुरः उवाच—विदुर ने पूछा; के—कौन थे; ते—वे; प्रचेतसः—प्रचेतागण; नाम—नाम के; कस्य—किसके; अपत्यानि—पुत्र; सु-व्रत—हे शुभ व्रतधारी मैत्रेय; कस्य—किसके; अन्ववाये—कुल में; प्रख्याताः—प्रसिद्ध; कुत्र—कहाँ; वा—भी; सत्रम्—यज्ञ; आसत—सम्पन्न हुआ।

विदुर ने मैत्रेय से पूछा : हे महान् भक्त, प्रचेतागण कौन थे? वे किस कुल के थे? वे किसके पुत्र थे और उन्होंने कहाँ पर महान् यज्ञ सम्पन्न किये?

तात्पर्य : पिछले अध्याय में प्रचेताओं के यज्ञस्थल पर नारद द्वारा तीन श्लोक गाये जाने से विदुर को और आगे प्रश्न पूछने का प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् ।

येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरिः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

मन्ये—सोचता हूँ; महा-भागवतम्—समस्त भक्तों में महान्; नारदम्—नारद मुनि को; देव—भगवान्; दर्शनम्—मिलने वाले; येन—जिसके द्वारा; प्रोक्तः—कहा गया; क्रिया-योगः—भक्तियोग; परिचर्या—सेवा करने के लिए; विधिः—विधि; हरेः—भगवान् की।

विदुर ने कहा : मैं जानता हूँ कि नारद मुनि समस्त भक्तों के शिरोमणि हैं। उन्होंने भक्ति की पांचरात्रिक विधि का संकलन किया है और भगवान् से साक्षात् भेंट की है।

तात्पर्य : भगवान् तक पहुँचने के दो मार्ग हैं। एक को भागवत मार्ग अथवा श्रीमद्भागवत का मार्ग और दूसरे को पांचरात्रिका विधि कहते हैं। पांचरात्रिका विधि मन्दिर में पूजा करने की विधि है, जबकि भागवत विधि नवधा भक्ति है, जो श्रवण तथा कीर्तन से प्रारम्भ होती है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन एकसाथ दोनों ही विधियों को अपनाता है, जिससे भगवान् के साक्षात्कार के मार्ग में निरन्तर प्रगति की जा सकती है। जैसाकि विदुर ने यहाँ उल्लेख किया है, सर्वप्रथम नारद ने यह पांचरात्रिक विधि चलायी।

स्वधर्मशीलैः पुरुषैर्भगवान्यज्ञपुरुषः ।

इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

स्व-धर्म-शीलैः—यज्ञ कर्म करते हुए; पुरुषैः—व्यक्तियों द्वारा; भगवान्—भगवान्; यज्ञ-पुरुषः—समस्त यज्ञों के भोक्ता; इज्यमानः—पूजित होकर; भक्तिमता—भक्त द्वारा; नारदेन—नारद द्वारा; ईरितः—वर्णित; किल—निस्सन्देह।

जब समस्त प्रचेता धार्मिक अनुष्ठान तथा यज्ञकर्म कर रहे थे और इस प्रकार भगवान् को

प्रसन्न करने के लिए पूजा कर रहे थे तो नारद मुनि ने ध्रुव महाराज के दिव्य गुणों का वर्णन किया।

तात्पर्य : नारद मुनि सर्वदा भगवान् की लीलाओं का गुणगान करते रहते हैं। इस श्लोक से प्रकट है कि वे न केवल भगवान् का गुणगान करते रहे हैं, वरन् भगवान् के भक्तों का भी गुणगान करना चाहते हैं। नारद मुनि का एकमात्र जीवन-लक्ष्य है भगवान् की भक्ति का प्रचार। इस हेतु उन्होंने *नारद पञ्चरात्र* का संकलन किया है, जो भक्तियोग की निर्देशिका है, जिससे भक्त लोग सदा भक्ति करने की विधि सीख सकते हैं तथा भगवान् के लिए अहर्निश यज्ञ करने में तत्पर हो सकते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में वर्णित है भगवान् ने सामाजिक जीवन के चार विभाग किये हैं—ये हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। *नारद पञ्चरात्र* में स्पष्ट वर्णन है कि प्रत्येक विभाग किस प्रकार से भगवान् को प्रसन्न करे। *भगवद्गीता* (१८.४५) में कहा गया है—*स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः*—अपना निर्धारित कर्म सम्पन्न करके मनुष्य भगवान् को प्रसन्न कर सकता है। *भागवत* में भी (१.२.१३) कहा गया है—*स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम्*—कर्तव्य की पूर्णता इसी में है कि मनुष्य अपना निर्धारित कार्य करते हुए भगवान् को प्रसन्न रखे। जब प्रचेतागण इस निर्देश के अनुसार यज्ञ कर रहे थे तो नारद इन कार्यों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, अतः उन्होंने यज्ञस्थल में ध्रुव महाराज के गुणों का गान करना चाहा।

यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः ।

मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन्कात्स्न्येनाचष्टुमर्हसि ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

याः—जो; ताः—वे सब; देवर्षिणा—नारद ऋषि द्वारा; तत्र—वहाँ; वर्णिताः—उल्लिखित; भगवत्-कथाः—भगवान् के कार्यकलापों से सम्बन्धित उपदेश; मह्यम्—मुझको; शुश्रूषवे—सुनने के लिए इच्छुक; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; कात्स्न्येन—पूर्णतः; आचष्टुम् अर्हसि—कृपया बताइये।

हे ब्राह्मण, नारद ने भगवान् का किस प्रकार गुणगान किया और उस सभा में किन लीलाओं का वर्णन हुआ? मैं उन्हें सुनने का इच्छुक हूँ। कृपया विस्तार से भगवान् की उस महिमा का वर्णन कीजिये।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* भगवान् की लीलाओं अर्थात् *भगवत्-कथा* का अभिलेख है। विदुर जो

कुछ मैत्रेय से सुनने को उत्सुक थे, उसे हम भी पाँच हजार वर्षों के बाद सुन सकते हैं, बशर्ते कि हम अधिक उत्सुक हों।

मैत्रेय उवाच

ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनम् ।
सार्वभौमश्रियं नैच्छदधिराजासनं पितुः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; ध्रुवस्य—ध्रुव महाराज का; च—भी; उत्कलः—उत्कल; पुत्रः—पुत्र; पितरि—पिता के पश्चात्; प्रस्थिते—चले जाने पर; वनम्—जंगल में; सार्व-भौम—समस्त देशों सहित; श्रियम्—सम्पदा; न ऐच्छत्—इच्छा नहीं की; अधिराज—राजसी; आसनम्—सिंहासन; पितुः—पिता के।

महामुनि मैत्रेय ने उत्तर दिया : हे विदुर, जब ध्रुव महाराज वन को चले गये तो उनके पुत्र उत्कल ने अपने पिता के वैभवपूर्ण राज सिंहासन की कोई कामना नहीं की, क्योंकि वह तो इस लोक के समस्त देशों के शासक के निमित्त था।

स जन्मनोपशान्तात्मा निःसङ्गः समदर्शनः ।
ददर्श लोके विततमात्मानं लोकमात्मनि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, उत्कल; जन्मना—अपने जन्म से ही; उपशान्त—अत्यन्त संतुष्ट, संतोषी; आत्मा—जीव; निःसङ्गः—आसक्ति-रहित; सम-दर्शनः—समदर्शी; ददर्श—देखा; लोके—संसार में; विततम्—फैला; आत्मानम्—परमात्मा; लोकम्—सारा संसार; आत्मनि—परमात्मा में।

उत्कल जन्म से ही पूर्णतया सन्तुष्ट था तथा संसार से अनासक्त था। वह समदर्शी था, क्योंकि वह प्रत्येक वस्तु को परमात्मा में और प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में परमात्मा को स्थित देखता था।

तात्पर्य : महाराज ध्रुव के पुत्र उत्कल के लक्षण तथा गुण महाभागवत जैसे हैं। जैसाकि भगवद्गीता (६.३०) में कहा गया है—यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति—सिद्ध भक्त भगवान् को सर्वत्र देखता है और उसे हर वस्तु भगवान् में स्थित दिखती है। भगवद्गीता (९.४) में इसकी भी पुष्टि हुई है—मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना—भगवान् कृष्ण सारे ब्रह्माण्ड में अपने निर्गुण रूप में व्याप्त हैं। प्रत्येक वस्तु उन्हीं पर आश्रित है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे ही हर वस्तु हैं। सिद्ध महाभागवत भक्त इस प्रकार देखता है—वह एक ही परमात्मा को हर एक के हृदय में स्थित देखता है, उसमें जीवात्माओं के भौतिक रूपों का कोई भेदभाव नहीं रह जाता। वह हर एक को भगवान् के

अंश- रूप में देखता है। सर्वत्र ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करनेवाला महाभागवत ईश्वर की दृष्टि से कभी ओझल नहीं होता और न परमेश्वर ही उसकी दृष्टि से ओझल होता है। यह तभी सम्भव है जब कोई ईश्वर के प्रेम में बहुत आगे निकल गया हो।

आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् ।
 अवबोधरसैकात्म्यमानन्दमनुसन्ततम् ॥ ८ ॥
 अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः ।
 स्वरूपमवरुन्धानो नात्मनोऽन्यं तदैक्षत ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

आत्मानम्—स्व; ब्रह्म—आत्मा; निर्वाणम्—अस्तित्व का लोप; प्रत्यस्तमित—रुका हुआ; विग्रहम्—पार्थक्य, वियोग;
 अवबोध-रस—ज्ञान के रस से; एक-आत्म्यम्—एकाकार; आनन्दम्—आनन्द; अनुसन्ततम्—विस्तीर्ण; अव्यवच्छिन्न—सतत;
 योग—योगाभ्यास से; अग्नि—अग्नि से; दग्ध—जला हुआ; कर्म—सकाम इच्छाएँ; मल—मलिन; आशयः—अपने मन में;
 स्वरूपम्—स्वाभाविक स्थिति; अवरुन्धानः—अनुभव करते हुए; न—नहीं; आत्मनः—परमात्मा की अपेक्षा; अन्यम्—कुछ भी; तदा—तब; ऐक्षत—देखा।

उसने परब्रह्म के विषय में अपने ज्ञान के प्रसार द्वारा पहले ही शरीर-बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर ली थी। यह मुक्ति निर्वाण कहलाती है। वह दिव्य आनन्द की स्थिति को प्राप्त था और उसी आनन्दमय स्थिति में रहता रहा, जो अधिकाधिक बढ़ती जा रही थी। यह सतत भक्तियोग के कारण ही सम्भव था जिसकी तुलना अग्नि से की गई है, जो समस्त मलिन भौतिक वस्तुओं को भस्म कर देती है। वह सदैव आत्म-साक्षात्कार की अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहता था और भगवान् के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देख सकता था और वह भक्तियोग में तल्लीन रहता था।

तात्पर्य : ये दोनों श्लोक भगवद्गीता के (१८.५४) निम्नलिखित श्लोक की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

“दिव्य अवस्था में स्थित पुरुष को तत्काल परब्रह्म की अनुभूति होती है और वह पूर्णरूपेण आनन्दमय हो जाता है, वह न शोक करता है और न किसी वस्तु की पाने की इच्छा ही। वह सब प्राणियों में समभाव रखता है। इस अवस्था में उसे मेरे शुद्ध भक्तियोग की प्राप्ति होती है।” भगवान्

चैतन्य के शिक्षाष्टक के प्रारम्भ में दिये हुए प्रथम श्लोक से भी इसकी व्याख्या हो जाती है।

चेतो दर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं ।

श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ॥

भक्तियोग-पद्धति सर्वोच्च योग-पद्धति है और यह-पद्धति भगवान् के पवित्र नाम के जप की ही सर्वोपरि भक्ति-कार्य है। नाम जप से भौतिक जगत से मुक्ति अथवा निर्वाण प्राप्त हो सकता है और इस प्रकार आध्यात्मिक जगत के आनन्दमय जीवन में वृद्धि होती है, जैसाकि भगवान् चैतन्य ने कहा है (आनन्दाम्बुधि-वर्धनम्)। जब मनुष्य इस पद पर स्थित होता है, तो उसकी रुचि भौतिक ऐश्वर्य या राजसिंहासन तथा सम्पूर्ण लोक के ऊपर प्रभुत्व जताने में नहीं रह जाती। यह स्थिति *विरक्तिरन्यत्र स्यात्* कहलाती है। यह भक्तियोग का फल है।

मनुष्य जितना ही भक्ति में आगे बढ़ता है, वह उतना ही भौतिक ऐश्वर्य तथा भौतिक कार्यों से विरक्त होता जाता है। यह आनन्दपूर्ण आत्म-प्रकृति है। *भगवद्गीता* (२.५९) में भी इसी का वर्णन है—*परं दृष्ट्वा निवर्तते*—आध्यात्मिक स्तर पर श्रेष्ठ, आनन्दमय जीवन का स्वाद चख लेने पर मनुष्य भौतिक सुख में भाग लेना छोड़ देता है। आत्मज्ञान में वृद्धि के साथ ही सभी भौतिक कामनाएँ जलकर राख हो जाती हैं, क्योंकि आत्मज्ञान अग्नि के समान होता है। योग की सिद्धि तभी सम्भव है जब मनुष्य भक्ति करता हुआ भगवान् के सतत सम्पर्क में रहे। भक्त तो पग-पग पर परम पुरुष का स्मरण करता चलता है। प्रत्येक बद्ध जीवात्मा अपने पूर्वजन्म के फलों से भरा रहता है, किन्तु यदि वह केवल भक्ति करे तो ये सभी गन्दी वस्तुएँ तुरन्त ही जलकर राख हो जाती हैं। *नारद पंचरात्र* में इसका वर्णन हुआ है—*सर्वोपाधिविनिर्मुक्तंतत्परत्वेन निर्मलम्*।

जडान्धबधिरोन्मत्तमूकाकृतिरतन्मतिः ।

लक्षितः पथि बालानां प्रशान्तार्चिरिवानलः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

जड—मूर्ख; अन्ध—अन्धा; बधिर—बहरा; उन्मत्त—पागल; मूक—गूँगा; आकृतिः—आकृति; अ-तत्—उस प्रकार का नहीं; मतिः—बुद्धि; लक्षितः—देखा जाता था; पथि—मार्ग पर; बालानाम्—अल्पज्ञों द्वारा; प्रशान्त—शान्त; अर्चिः—ज्वालाओं से युक्त; इव—सदृश; अनलः—अग्नि।

अल्पज्ञानी राह चलते लोगों को उत्कल मूर्ख, अन्धा, गूँगा, बहरा तथा पागल सा प्रतीत होता

था, किन्तु वह वास्तव में ऐसा था नहीं। वह उस अग्नि के समान बना रहा जो राख से ढकी होने के कारण लपटों से रहित होती है।

तात्पर्य : विरोधाभासों, उलझनों तथा भौतिकतावादी व्यक्तियों द्वारा पैदा की जानेवाली प्रतिकूल परिस्थितियों से अपने को बचाने के लिए जड़भरत या उत्कल जैसे परम साधु पुरुष चुपचाप रहते हैं। जो अल्पज्ञानी हैं, वे ऐसे साधु पुरुषों को पागल, बहरा या गूँगा समझते हैं। वास्तव में सिद्ध-भक्त ऐसे लोगों से, जो भक्तिमय जीवन नहीं बिताते, बातचीत करने से कतराते हैं, किन्तु जो भक्ति करते हैं उनसे वे मित्रतापूर्वक बोलते हैं और जो अबोध हैं उनको प्रबद्ध करने के लिए बोलते हैं। एक तरह से सारा संसार अभक्तों से भरा पड़ा है, अतः एक प्रकार का परम सिद्ध भक्त *भजनानन्दी* कहलाता है। किन्तु जो *गोष्ठ्यानन्दी* हैं, वे भक्तों की संख्या बढ़ाने के लिए उपदेश देते हैं। किन्तु ऐसे उपदेशक भी उन विरोधी तत्त्वों से बचते रहते हैं, जो आध्यात्मिक जीवन के प्रतिकूल होते हैं।

मत्वा तं जडमुन्मत्तं कुलवृद्धाः समन्त्रिणः ।
वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

मत्वा—मान कर; तम्—उत्कल को; जडम्—बुद्धिहीन; उन्मत्तम्—पागल; कुल-वृद्धाः—कुल के गुरुजन; समन्त्रिणः—
मंत्रियों समेत; वत्सरम्—वत्सर को; भू-पतिम्—संसार का शासक; चक्रुः—बनाया; यवीयांसम्—छोटा; भ्रमेः—भ्रमि का;
सुतम्—पुत्र।

फलतः मंत्रियों तथा कुल के समस्त गुरुजनों ने समझा कि उत्कल बुद्धिहीन और सचमुच ही पागल है। इस प्रकार उसका छोटा भाई, जिसका नाम वत्सर था और जो भ्रमि का पुत्र था, राजसिंहासन पर बिठा दिया गया और वह सारे संसार का राजा हो गया।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि तब राजतंत्र तो था, किन्तु नितांत निरंकुशता न थी। परिवार के गुरुजन तथा मंत्री परिवर्तन ला सकते थे और सिंहासन के लिए उचित व्यक्ति चुन सकते थे, यद्यपि राज-परिवार का ही कोई व्यक्ति सिंहासन का अधिकारी बन सकता था। आज भी जहाँ कहीं भी राजतंत्र है, कभी-कभी मंत्री तथा परिवार के गुरुजन मिलकर राज-परिवार के किसी सदस्य की बजाय किसी दूसरे सदस्य को चुनकर सिंहासन पर बिठा देते हैं।

स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्यासूत षडात्मजान् ।
पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

स्वर्वीथिः—स्वर्वीथि; वत्सरस्य—राजा वत्सर की; इष्टा—अत्यन्त प्रिय; भार्या—पत्नी ने; असूत—जन्म दिया; षट्—छह;
आत्मजान्—पुत्रों को; पुष्पार्णम्—पुष्पार्ण; तिग्मकेतुम्—तिग्मकेतु; च—भी; इषम्—इष; ऊर्जम्—ऊर्ज; वसुम्—वसु;
जयम्—जय ।

राजा वत्सर की अत्यन्त प्रिय पत्नी स्वर्वीथि थी और उस ने छह पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम थे पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु तथा जय ।

तात्पर्य : वत्सर की पत्नी को यहाँ इष्टा अर्थात् पूज्य बताया गया है। दूसरे शब्दों में, ऐसा प्रतीत होता है कि वत्सर की पत्नी में समस्त उत्तम गुण थे—उदाहरणार्थ, वह सदैव आज्ञाकारिणी तथा पति की अत्यन्त प्रिया थी। गृहस्थी के कार्यों को सँभालने में वह दक्ष थी। यदि पति तथा पत्नी दोनों उत्तमगुणों से युक्त हों और शान्तिपूर्वक रहें, तो उनकी सन्तानें उत्तम होती हैं और सारा परिवार सुखी तथा सम्पन्न रहता है।

पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः ।
प्रातर्मध्यन्दिनं सायमिति ह्यासन्प्रभासुताः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

पुष्पार्णस्य—पुष्पार्ण की; प्रभा—प्रभा; भार्या—पत्नी; दोषा—दोषा; च—भी; द्वे—दो; बभूवतुः—थीं; प्रातः—प्रातः;
मध्यन्दिनम्—मध्यन्दिनम्; सायम्—सायम्; इति—इस प्रकार; हि—निश्चय ही; आसन्—थे; प्रभा-सुताः—प्रभा के पुत्र ।

पुष्पार्ण के दो पत्नियाँ थीं, जिनके नाम प्रभा तथा दोषा थे। प्रभा के तीन पुत्र हुए जिनके नाम प्रातः, मध्यन्दिनम् तथा सायम् थे।

प्रदोषो निशितो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः ।
व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

प्रदोषः—प्रदोष; निशितः—निशित; व्युष्टः—व्युष्ट; इति—इस प्रकार; दोषा—दोषा के; सुताः—पुत्र; त्रयः—तीन; व्युष्टः—
व्युष्ट; सुतम्—पुत्र; पुष्करिण्याम्—पुष्करिणी में; सर्व-तेजसम्—सर्वतेजा (सर्वशक्तिमान) नामक; आदधे—उत्पन्न किया ।

दोषा के तीन पुत्र थे—प्रदोष, निशित तथा व्युष्ट। व्युष्ट की पत्नी का नाम पुष्करिणी था, जिसने सर्वतेजा नामक अत्यन्त बलशाली पुत्र को जन्म दिया।

स चक्षुः सुतमाकृत्यां पत्न्यां मनुमवाप ह ।
 मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान् ॥ १५ ॥
 पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवन्तमृतं व्रतम् ।
 अग्निष्टोममतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबिमुल्मुकम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (सर्वतेजा); चक्षुः—चक्षु नामक; सुतम्—पुत्र; आकृत्याम्—आकृति में; पत्न्याम्—पत्नी में; मनुम्—चाक्षुष मनु;
 अवाप—प्राप्त किया; ह—निस्सन्देह; मनोः—मनु की; असूत—जन्म दिया; महिषी—रानी; विरजान्—निर्विकार; नड्वला—
 नड्वला ने; सुतान्—पुत्र; पुरुम्—पुरु; कुत्सम्—कुत्स; त्रितम्—त्रित; द्युम्नम्—द्युम्न; सत्यवन्तम्—सत्यवान; ऋतम्—ऋत;
 व्रतम्—व्रत; अग्निष्टोमम्—अग्निष्टोम; अतीरात्रम्—अतिरात्र; प्रद्युम्नम्—प्रद्युम्न; शिबिम्—शिबि; उल्मुकम्—उल्मुक को ।

सर्वतेजा की पत्नी आकृति ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम चाक्षुष था, जो मनु कल्पान्त में छठा मनु बना। चाक्षुष मनु की पत्नी नड्वला ने निम्नलिखित निर्दोष पुत्रों को जन्म दिया—पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान्, ऋत, व्रत, अग्निष्टोम्, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिबि तथा उल्मुक ।

उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यां षडुत्तमान् ।
 अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

उल्मुकः—उल्मुक ने; अजनयत्—उत्पन्न किया; पुत्रान्—पुत्रों को; पुष्करिण्याम्—अपनी पत्नी पुष्करिणी से; षट्—छह;
 उत्तमान्—अत्यन्त उत्तम; अङ्गम्—अंग; सुमनसम्—सुमना; ख्यातिम्—ख्याति; क्रतुम्—क्रतु; अङ्गिरसम्—अंगिरा; गयम्—
 गय ।

उल्मुक के बारह पुत्रों में से छह पुत्र उनकी पत्नी पुष्करिणी से उत्पन्न हुए। वे सभी अति उत्तम पुत्र थे। उनके नाम थे अंग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा तथा गय।

सुनीथाङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणम् ।
 यद्वैःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सुनीथा—सुनीथा; अङ्गस्य—अंग की; या—जो; पत्नी—पत्नी; सुषुवे—जन्म दिया; वेनम्—वेन; उल्बणम्—अत्यन्त कुटिल;
 यत्—जिसका; दैःशील्यात्—बुरा आचरण होने से; सः—वह; राज-ऋषिः—राजर्षि अंग; निर्विण्णः—अत्यन्त निराश;
 निरगात्—बाहर चला गया; पुरात्—घर से ।

अंग की पत्नी सुनीथा से वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो अत्यन्त कुटिल था। साधु स्वभाव का राजा अंग वेन के दुराचरण से अत्यन्त निराश था, फलतः उसने घर तथा राजपाट छोड़ दिया और जंगल चला गया।

यमङ्ग शेषुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल ।
 गतासोस्तस्य भूयस्ते ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥ १९ ॥
 अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः ।
 जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यम्—जिसको (वेन को); अङ्ग—हे विदुर; शेषुः—उन्होंने शाप दिया; कुपिताः—क्रुद्ध; वाक्-वज्राः—जिनके शब्द वज्र के समान कठोर हैं; मुनयः—बड़े-बड़े मुनि; किल—निस्सन्देह; गत-असोः—मरने के बाद; तस्य—उसका; भूयः—साथ ही; ते—वे; ममन्थुः—मथा; दक्षिणम्—दाहिना; करम्—हाथ; अराजके—बिना राजा के; तदा—तब; लोके—संसार में; दस्युभिः—बदमाशों तथा चोरों के द्वारा; पीडिताः—दुखी; प्रजाः—सभी नागरिक; जातः—उत्पन्न हुआ; नारायण—भगवान् के; अंशेन—आंशिक प्रतिरूप द्वारा; पृथुः—पृथु; आद्यः—मूल; क्षिति-ईश्वरः—संसार का शासक ।

हे विदुर, जब ऋषिगण शाप देते हैं, तो उनके शब्द वज्र के समान कठोर होते हैं। अतः जब उन्होंने क्रोधवश वेन को शाप दे दिया तो वह मर गया। उसकी मृत्यु के बाद कोई राजा न होने से चोर-उचक्रे पनपने लगे, राज्य में अनियमितता फैल गयी और समस्त नागरिकों को भारी कष्ट झेलना पड़ा। यह देखकर ऋषियों ने वेन की दाहिनी भुजा को दण्ड मथनी बना लिया और उनके मथने के कारण भगवान् विष्णु अपने अंश रूप में संसार के आदि सम्राट राजा पृथु के रूप में अवतरित हुए।

तात्पर्य : राजतंत्र प्रजातंत्र से उत्तम होता है क्योंकि यदि राजतंत्र प्रबल हो तो राज्य के भीतर विधि-विधानों का सुचारु रूप से पालन होता है। सौ वर्ष पूर्व भी भारत की रियासत कश्मीर का राजा इतना प्रबल था कि यदि उसके राज्य में कोई चोर पकड़ा जाता और उसके समक्ष लाया जाता तो वह तुरन्त चोर के हाथ कटवा देता था। इस कठोर दण्ड के कारण उसके राज्य में एक भी चोरी नहीं होती थी। यहाँ तक कि यदि कोई राह में कुछ छोड़ देता तो उसे कोई छूता तक न था। नियम यह था कि जो वस्तु का मालिक हो, वही उसे ले जाये, अन्य कोई उसे छुए तक नहीं। तथाकथित प्रजातंत्र में जहाँ कहीं चोरी होती है, पुलिस वहाँ पहुँच कर मामले को दर्ज करती है, किन्तु सामान्यतः चोर कभी नहीं पकड़ा जाता और न उसे दण्ड दिया जाता है। असमर्थ सरकार होने से इस समय पूरे संसार में चोरों, उचक्रे तथा ठगों की भरमार है।

विदुर उवाच

तस्य शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः ।

राज्ञः कथमभूद्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

विदुरः उवाच—विदुर ने कहा; तस्य—उसका (अंग का); शील-निधेः—उत्तम गुणों का आगार; साधोः—सन्तु पुरुष; ब्रह्मण्यस्य—ब्राह्मण सभ्यता का प्रेमी; महात्मनः—महापुरुष; राज्ञः—राजा का; कथम्—किस तरह; अभूत्—था; दुष्टा—बुरा; प्रजा—पुत्र; यत्—जिससे; विमनाः—अन्यमनस्क; ययौ—छोड़ दिया ।

विदुर ने मैत्रेय से पूछा : हे ब्राह्मण, राजा अंग तो अत्यन्त भद्र था। वह अत्यन्त चरित्रवान तथा साधु पुरुष था और ब्राह्मण-संस्कृति का प्रेमी था। तो फिर इतने महान् पुरुष के वेन जैसा दुष्ट पुत्र कैसे उत्पन्न हुआ जिससे वह अपने राज्य के प्रति अन्यमनस्क हो उठा और उसे छोड़ दिया ?

तात्पर्य : आशा की जाती है कि पारिवारिक जीवन में मनुष्य अपने पिता, माता, पत्नी तथा बच्चों के साथ सुखपूर्वक रहेगा, किन्तु किन्हीं परिस्थितियों में कोई पिता, माता, संतति अथवा पत्नी शत्रु बन जाते हैं। चाणक्य पंडित ने कहा है कि जो पिता अत्यधिक ऋणी होता है, वह शत्रु है, जो माता दुसरी शादी कर लेती है, वह भी शत्रु है, जो पत्नी अत्यन्त सुन्दर होती है, वह भी शत्रु है और जो पुत्र मूर्ख एवं निकम्मा हो वह भी शत्रु होता है। इस प्रकार जब परिवार का कोई सदस्य शत्रु बन जाता है, तो पारिवारिक जीवन बिताना या गृहस्थ बने रहना कठिन हो जाता है। सामान्यतः भौतिक जगत में ऐसी परिस्थितियाँ आती रहती हैं। इसीलिए वैदिक संस्कृति के अनुसार मनुष्य को पचासवें वर्ष के बाद अपने परिवार वालों से विदा ले लेनी चाहिए जिससे कि उसका शेष जीवन कृष्ण-चेतना की खोज में लगाया जा सके।

किं वांहो वेन उद्दिश्य ब्रह्मदण्डमयूयुजन् ।

दण्डव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्यों; वा—भी; अंहः—पापकर्म; वेने—वेन को; उद्दिश्य—देखकर; ब्रह्म-दण्डम्—ब्राह्मण का शाप; अयूयुजन्—दण्डित करना चाहा; दण्ड-व्रत-धरे—जो दण्ड के डण्डे को धारण करता है; राज्ञि—राजा को; मुनयः—मुनिगण; धर्म-कोविदाः—धर्म से पूरी तरह ज्ञात ।

विदुर ने आगे पूछा कि महान् धर्मात्मा ऋषियों ने राजा वेन को, जो स्वयं दण्ड देनेवाले दण्ड को धारण करनेवाला था, क्योंकर शाप देना चाहा और इस प्रकार उसे सबसे बड़ा दण्ड

(ब्रह्मशाप) दे डाला ?

तात्पर्य : ऐसा ज्ञात है कि राजा हर एक को दण्ड दे सकता है, किन्तु इस प्रसंग में प्रतीत होता है कि ऋषियों ने उल्टे राजा को दण्डित किया। अवश्य ही राजा ने कुछ गम्भीर कार्य किया होगा अन्यथा ऋषियों ने, जिनसे अत्यधिक सहिष्णु होने की अपेक्षा की जाती है, धार्मिक चेतना में अग्रसर होने पर भी उसे क्यों दण्डित किया ? यह भी प्रतीत होता है कि राजा ब्राह्मण संस्कृति से पृथक् सत्ता नहीं रखता था। राजा के ऊपर ब्राह्मणों का नियंत्रण रहता था और आवश्यकता पड़ने पर वे राजा को किसी हथियार से नहीं, वरन् *ब्रह्मशाप* के मंत्र से पदच्युत कर सकते थे या उसका वध कर सकते थे। ब्राह्मण इतने शक्तिशाली थे कि उनके शाप से लोग तुरन्त मर जाते थे।

नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि ।

यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

न—कभी नहीं; अवध्येयः—अपमानित होने के लिए; प्रजा-पालः—राजा; प्रजाभिः—प्रजा द्वारा; अघवान्—पाप से पूर्ण; अपि—यद्यपि; यत्—क्योंकि; असौ—वह; लोक-पालानाम्—अनेक राजाओं का; बिभर्ति—पालन करता है; ओजः—ओज, तेज; स्व-तेजसा—व्यक्तिगत प्रभाव से।

प्रजा का कर्तव्य है कि वह राजा का अपमान न करे, चाहे यदाकदा वह अत्यन्त पापपूर्ण कृत्य करता हुआ ही क्यों न प्रतीत हो। अपने तेज के कारण राजा अन्य शासनकर्ता प्रमुखों से सदैव अधिक प्रभावशाली होता है।

तात्पर्य : वैदिक सभ्यता के अनुसार राजा भगवान् का प्रतिनिधि होता है। वह *नरनारायण* कहलाता है, जो इस बात का सूचक है कि नारायण अर्थात् भगवान् राजा के रूप में समाज में प्रकट होते हैं। यह शिष्टाचार है कि प्रजा न तो ब्राह्मण का, न क्षत्रिय राजा का कभी अपमान करती है। भले ही राजा पापी प्रतीत होता हो, किन्तु प्रजा उसका अपमान नहीं करती। किन्तु वेन के विषय में ऐसा प्रतीत होता है कि उस को *नरदेवताओं* ने शाप दिया था जिससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि उसके पापकर्म अत्यन्त भयावह थे।

एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्सुनीथात्मजचेष्टितम् ।

श्रद्धधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

एतत्—ये सब; आख्याहि—वर्णन करें; मे—मुझसे; ब्रह्मन्—हे परम ब्राह्मण; सुनीथा-आत्मज—सुनीथा के पुत्र वेन का; चेष्टितम्—कार्यकलाप; श्रद्धधानाय—श्रद्धालु, आज्ञाकारी; भक्ताय—अपने भक्त को; त्वम्—तुम; पर-अवर—भूत तथा भविष्य सहित; वित्-तमः—सुपरिचित।

विदुर ने मैत्रेय से अनुरोध किया : हे ब्राह्मण, आप भूत तथा भविष्य के समस्त विषयों में पारंगत हैं। अतः मैं आपसे राजा वेन के समस्त कार्यकलापों को सुनना चाहता हूँ। मैं आपका श्रद्धालु भक्त हूँ, अतः आप इसे विस्तार से कहें।

तात्पर्य : विदुर ने मैत्रेय को अपना गुरु मान रखा था। शिष्य सदैव अपने गुरु से प्रश्न करता है और गुरु प्रश्नों का उत्तर देता है, बशर्ते कि शिष्य भद्र हो तथा समर्पित हो। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कहा है कि जिस पर गुरु की कृपा होती है उस पर ईश्वर की कृपा होती है। जब तक शिष्य अत्यन्त विनीत और समर्पित नहीं होता, गुरु दिव्य ज्ञान के सभी रहस्य प्रकट करने के लिए तत्पर नहीं होता। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है गुरु से ज्ञान प्राप्त करने की विधि में समर्पण, उत्सुकता तथा सेवा सम्मिलित हैं।

मैत्रेय उवाच

अङ्गोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम् ।

नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने उत्तर दिया; अङ्गः—राजा अंग ने; अश्वमेधम्—अश्वमेध यज्ञ; राज-ऋषिः—साधु राजा; राजहार—सम्पन्न किया; महा-क्रतुम्—महान् यज्ञ; न—नहीं; आजग्मुः—आये; देवताः—देवता; तस्मिन्—उस यज्ञ में; आहूताः—बुलाये गये; ब्रह्म-वादिभिः—यज्ञ करने में ब्राह्मणों द्वारा।

श्री मैत्रेय ने उत्तर दिया : हे विदुर, एक बार राजा अंग ने अश्वमेध नामक महान् यज्ञ सम्पन्न करने की योजना बनाई। वहाँ पर उपस्थित समस्त सुयोग्य ब्राह्मण जानते थे कि देवताओं का आवाहन कैसे किया जाता है, किन्तु उनके प्रयास के बावजूद भी किसी देवता ने न तो भाग लिया और न ही कोई उस यज्ञ में प्रकट हुआ।

तात्पर्य : वैदिक यज्ञ सामान्य कृत्य नहीं होता। ऐसे यज्ञों में देवता भाग लेते थे और इन कृत्यों में जिन पशुओं की बलि दी जाती थी उनको नवीन जीवन मिलता था। इस कलिकाल में कोई शक्तिशाली

ब्राह्मण नहीं है, जो देवताओं का आवाहन कर सके, अथवा पशुओं को नया जीवनदान दे सके। प्राचीन काल में वैदिक मंत्रों में पारंगत ब्राह्मण मंत्रों की शक्ति दिखा सकते थे, किन्तु इस युग में ऐसे ब्राह्मणों के अभाव से इस प्रकार के समस्त यज्ञ वर्जित हैं। जिस यज्ञ में घोड़ों की बलि दी जाती थी वह अश्वमेध कहलाता था। कभी-कभी गायों की भी बलि (गवालम्भ), खाने के लिए नहीं, वरन् मंत्रों की शक्ति द्वारा नया जीवन प्रदान करने के लिए, दी जाती थी। अतः इस युग में एकमात्र व्यावहारिक यज्ञ संकीर्तन यज्ञ अर्थात् चौबीसों घंटे हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करना है।

तमूचुर्विस्मितास्तत्र यजमानमथत्विजः ।

हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तम्—राजा अंग को; ऊचुः—कहा; विस्मिताः—आश्चर्यचकित; तत्र—वहाँ; यजमानम्—यज्ञ करानेवाले को; अथ—तब; ऋत्विजः—पुरोहित; हवींषि—शुद्ध घी की आहुतियाँ; हूयमानानि—डाले जाने पर; न—नहीं; ते—वे; गृह्णन्ति—स्वीकार करते हैं; देवताः—देवतागण।

तब यज्ञ में लगे पुरोहितों ने राजा अंग को सूचित किया : हे राजन्, हम यज्ञ में विधिपूर्वक शुद्ध घी की आहुति दे रहे हैं, किन्तु हमारे सारे यत्नों के बावजूद देवतागण उसे स्वीकार नहीं कर रहे हैं।

राजन्हवींष्यदुष्टानि श्रद्धयासादितानि ते ।

छन्दांस्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

राजन्—हे राजा; हवींषि—यज्ञ की बलि, होमसामग्री; अदुष्टानि—दूषित नहीं; श्रद्धया—श्रद्धा तथा सावधानी सहित; आसादितानि—एकत्र की गई; ते—तुम्हारे; छन्दांसि—मंत्र; अयात-यामानि—न्यून नहीं; योजितानि—विधिपूर्वक सम्पन्न; धृत-व्रतैः—सुपात्र ब्राह्मणों द्वारा।

हे राजन्, हमें ज्ञात है कि आपने अत्यन्त श्रद्धा तथा सावधानी से यज्ञ की सारी सामग्री एकत्रित की है और वह दूषित नहीं है। हमारे द्वारा उच्चरित वैदिक मंत्रों में भी किसी प्रकार की कमी नहीं है क्योंकि यहां उपस्थित सभी ब्राह्मण तथा पुरोहित योग्य है और समस्त कृत्यों को ठीक से कर भी रहे हैं।

तात्पर्य : परम्परा से ही वेदविद् ब्राह्मण लोग वैदिक मंत्रों का ठीक से उच्चारण करते हैं। मंत्र-पद

तथा संस्कृत शब्द दोनों का सही-सही उच्चारण होना चाहिए, अन्यथा मंत्र सफल नहीं होगा। इस युग में ब्राह्मण लोग न तो संस्कृत भाषा में दक्ष हैं और न उनका व्यावहारिक जीवन शुद्ध है। किन्तु हरे कृष्ण मंत्र का जप करने से यज्ञ करने से प्राप्त होनेवाला सर्वोच्च लाभ प्राप्त हो सकता है। यदि हरे कृष्ण मंत्र का ठीक से उच्चारण न भी किया जाये तो भी इसमें इतनी शक्ति है कि जपकर्ता को लाभ होता है।

न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि ।

यन्न गृह्णन्ति भागान्स्वान्ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; विदाम—जान सकना; इह—इस प्रसंग में; देवानाम्—देवताओं का; हेलनम्—तिरस्कार, उपेक्षा; वयम्—हम; अणु—सूक्ष्म; अपि—भी; यत्—जिससे; न—नहीं; गृह्णन्ति—स्वीकार करते हैं; भागान्—भाग, अंश; स्वान्—अपने-अपने; ये—जो; देवाः—देवतागण; कर्म-साक्षिणः—यज्ञ के साक्षी।

हे राजन्, हमें ऐसा कोई कारण नहीं दिखता जिससे देवतागण अपने को किसी प्रकार से अपमानित या उपेक्षित समझ सकें, तो भी यज्ञ के साक्षी देवता अपना भाग ग्रहण नहीं कर रहे हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों है?

तात्पर्य : यहाँ पर यह इंगित किया गया है कि यदि पुरोहित किसी प्रकार की असावधानी बरतता है, तो देवता यज्ञ का अपना भाग ग्रहण नहीं करते। इसी प्रकार भक्ति में होनेवाले अपराध सेवा-अपराध कहलाते हैं। जो लोग मन्दिर में राधाकृष्ण-विग्रह की पूजा करते हैं उन्हें ऐसे अपराधों से बचना चाहिए। इन सेवा-अपराधों का वर्णन भक्तिरसामृत सिन्धु पुस्तक में मिलेगा। यदि हम विग्रह पर केवल दिखावे के रूप में सेवा करते भेंट चढ़ाते हैं और सेवा-अपराधों पर ध्यान नहीं देते तो राधाकृष्ण ऐसे अभक्तों की भेंट ग्रहण नहीं करते। अतः मन्दिर में पूजा करनेवाले भक्तों को अपनी विधियाँ नहीं बनानी चाहिए, वरन् स्वच्छता के विधि विधानों का ध्यान रखना चाहिए, तभी भेंटें स्वीकार की जाएँगी।

मैत्रेय उवाच

अङ्गो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः ।

तत्प्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने उत्तर दिया; अङ्गः—राजा अंग; द्विज-वचः—ब्राह्मणों के वचन; श्रुत्वा—सुनकर; यजमानः—यज्ञकर्ता; सुदुर्मनाः—मन में अत्यन्त खिन्न; तत्—उसके सम्बन्ध में; प्रष्टुम्—पूछने के उद्देश्य से; व्यसृजत् वाचम्—वह बोला; सदस्यान्—पुरोहितों से; तत्—उनकी; अनुज्ञया—अनुमति से।

मैत्रेय ने बतलाया कि पुरोहितों के इस कथन को सुनकर राजा अंग अत्यधिक खिन्न हो उठा। तब उसने पुरोहितों से कुछ कहने की अनुमति माँगी और यज्ञस्थल में उपस्थित समस्त पुरोहितों से उसने पूछा।

नागच्छन्त्याहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहानिह ।
सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं मया कृतम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; आगच्छन्ति—आ रहे हैं; आहुताः—आमंत्रित किये जाने पर; देवाः—देवगण; न—नहीं; गृह्णन्ति—स्वीकार कर रहे हैं; ग्रहान्—भाग; इह—इस यज्ञ में; सदसः-पतयः—हे पुरोहितो; ब्रूत—कृपया बताएँ; किम्—क्या; अवद्यम्—अपराध; मया—मेरे द्वारा; कृतम्—किया गया।

राजा अंग ने पुरोहित वर्ग को सम्बोधित करते हुए पूछा : हे पुरोहितो, आप कृपा करके बताएँ कि मुझसे कौन सा अपराध हुआ है। आमंत्रित होने पर भी देवता न तो यज्ञ में सम्मिलित हो रहे हैं और न अपना भाग ग्रहण कर रहे हैं।

सदसस्पतय ऊचुः

नरदेवेह भवतो नाद्यं तावन्मनाक्स्थितम् ।
अस्त्येकं प्राक्तनमद्यं यदिहेदृक्त्वमप्रजः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

सदसः-पतयः ऊचुः—प्रधान पुरोहित ने कहा; नर-देव—हे राजन्; इह—इस जीवन में; भवतः—आपका; न—नहीं; अद्यम्—पापकर्म; तावत् मनाक्—रंचमात्र भी; स्थितम्—स्थित; अस्ति—है; एकम्—एक; प्राक्तनम्—पूर्वजन्म में; अद्यम्—पापकर्म; यत्—जिससे; इह—जीवन में; ईदृक्—इस प्रकार; त्वम्—तुम; अप्रजः—पुत्रहीन।

प्रधान पुरोहित ने कहा : हे राजन्, हमें तो आपके इस जीवन में आप के मन से किया गया भी कोई भी पापकर्म नहीं दिखता, अतः आप तनिक भी अपराधी नहीं हैं। किन्तु हमें दिखता है कि आपने पूर्वजन्म में पापकर्म किये हैं जिनके कारण समस्त गुणों के होते हुए भी आप पुत्रहीन हैं।

तात्पर्य : विवाह करने का उद्देश्य पुत्र उत्पन्न करना होता है, क्योंकि पिता तथा पूर्वज यदि नारकीय बद्धजीवन में पड़े हो उससे उबारने के लिए पुत्र अनिवार्य है। इसीलिए चाणक्य पण्डित ने कहा है—

पुत्रहीनं गृहं शून्यम्—पुत्र के बिना विवाहित जीवन निन्दनीय है। राजा अंग अत्यन्त पवित्र राजा थे, किन्तु अपने पूर्व पापकर्मों के कारण उन्हें पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसी के पुत्र उत्पन्न नहीं होता तो यह उसके पूर्व पापमय जीवन का फल है।

तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप ।
इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तथा—अतः; साधय—प्राप्त करने के लिए यज्ञ करें; भद्रम्—कल्याण हो; ते—तुम्हारा; आत्मानम्—अपना; सु-प्रजम्—उत्तम पुत्र; नृप—हे राजा; इष्टः—पूजित होकर; ते—तुम्हारे द्वारा; पुत्र-कामस्य—पुत्र की कामना से; पुत्रम्—पुत्र; दास्यति—प्रदान करेगा; यज्ञ-भुक्—यज्ञ का भोक्ता श्रीभगवान्।

हे राजन, आपका कल्याण हो। आपके कोई पुत्र नहीं हैं, अतः यदि आप तुरन्त भगवान् से प्रार्थना करें और पुत्र माँगें तथा यदि इस कार्य के लिए यज्ञ करें तो यज्ञभोक्ता भगवान् आपकी कामना को पूर्ण करेंगे।

तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवोकसः ।
यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तथा—तत्पश्चात्; स्व-भाग-धेयानि—यज्ञ में अपने-अपने भाग; ग्रहीष्यन्ति—ग्रहण करेंगे; दिव-ओकसः—समस्त देवता; यत्—क्योंकि; यज्ञ-पुरुषः—समस्त यज्ञों का भोक्ता; साक्षात्—प्रत्यक्ष; अपत्याय—पुत्र के लिए; हरिः—भगवान्; वृतः—आमंत्रित किया जाता है।

जब समस्त यज्ञों के भोक्ता हरि को पुत्र की कामना पूरी करने के लिए आमंत्रित किया जाएगा, तो सभी देवता उनके साथ आएँगे और अपना-अपना यज्ञ-भाग ग्रहण करेंगे।

तात्पर्य : जब भी कोई यज्ञ किया जाता है, तो उसका उद्देश्य समस्त यज्ञों के भोक्ता विष्णु को प्रसन्न करना होता है और जब वे यज्ञस्थल में आने के लिए राजी हो जाते हैं, तो सभी देवता स्वतः अपने स्वामी का अनुगमन करते हैं और ऐसे यज्ञों में उनका भाग उन्हें मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यज्ञ देवताओं को नहीं, वरन् भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के निमित्त किये जाते हैं।

तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्यान्कामयते जनः ।
आराधितो यथैवैष तथा पुंसां फलोदयः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

तान् तान्—वही वही; कामान्—इच्छित वस्तुएँ; हरिः—भगवान्; दद्यात्—देंगे; यान् यान्—जो जो; कामयते—इच्छा करता; जनः—व्यक्ति; आराधितः—पूजित होकर; यथा—जिस तरह; एव—निश्चय ही; एषः—भगवान्; तथा—उसी प्रकार; पुंसाम्—मनुष्यों का; फल-उदयः—फल।

यज्ञों का कर्ता (कर्मकाण्ड के अन्तर्गत) जिस कामना से भगवान् की पूजा करता है, वह कामना पूरी होती है।

तात्पर्य : भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि वे पूजा करनेवाले को उसकी इच्छाके अनुसार आशीर्वाद देते हैं। भगवान् समस्त बद्धजीवों को इस संसार में अपने-अपने ढंग से कर्म करने की छूट देते हैं। किन्तु वे अपने भक्तों से कहते हैं कि उस प्रकार कर्म न करके उनके लिए श्रेयस्कर होगा कि वे उनकी शरण में आएँ, क्योंकि वे भक्तों का भार स्वयं उठाएँगे। एक भक्त तथा सकाम कर्मी के बीच यही अन्तर है। सकाम-कर्मी मात्र अपने कर्मों का फल भोगता है, किन्तु भक्त भगवान् के निर्देशन में भक्तिमार्ग पर अग्रसर होता हुआ जीवन का परम लक्ष्य—अपने घर अर्थात् भगवान् के परम धाम जाना—प्राप्त करता है। इस श्लोक में महत्त्वपूर्ण शब्द कामान् है, जिसका अर्थ है, “इन्द्रिय को तृप्त करनेवाली इच्छाएँ।” भक्त समस्त कामों से रहित होता है। वह तो अन्याभिलाषिता-शून्य होता है अर्थात् भक्त तो इन्द्रियतृप्ति की समस्त अभिलाषाओं से रहित होता है। इसका एकमात्र लक्ष्य भगवान् की इन्द्रियों को तुष्ट करना होता है। एक कर्मी तथा भक्त में यही अन्तर है।

इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये ।

पुरोडाशं निरवपन्शिपिविष्टाय विष्णावे ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; व्यवसिताः—निश्चय करके; विप्राः—समस्त ब्राह्मण; तस्य—उसके; राज्ञः—राजा के; प्रजातये—पुत्र-प्राप्ति के उद्देश्य से; पुरोडाशम्—यज्ञ की सामग्री; निरवपन्—प्रदान की; शिपि-विष्टाय—यज्ञ की अग्नि में स्थित, भगवान् को; विष्णावे—भगवान् विष्णु को।

इस प्रकार राजा अंग को पुत्र प्राप्ति कराने के लिए उन्होंने घट-घट वासी भगवान् विष्णु को आहुतियाँ अर्पित करने का निश्चय किया।

तात्पर्य : याज्ञिक अनुष्ठानों के अनुसार कभी-कभी यज्ञस्थल पर पशुओं की बलि दी जाती है। ऐसे पशुओं की बलि उन्हें मारने के लिए नहीं अपितु उन्हें नया जीवन प्रदान करने के लिए दी जाती है। ऐसा कर्म प्रयोगस्वरूप होता था जिससे यह देखा जा सके कि वैदिक मंत्रों का सही-सही उच्चारण

हो रहा है या नहीं। कभी-कभी चिकित्सा-प्रयोगशालाओं में छोटे-छोटे पशुओं को ओषधीय प्रभाव जानने के लिए मारा जाता है। चिकित्सालय में पशुओं को पुनः जिलाया नहीं जाता, किन्तु यज्ञस्थल में पशुओं की बलि चढ़ाने के बाद वैदिक मंत्रों के बल से उन्हें जीवन प्रदान किया जाता था। इस श्लोक में *शिपिविष्टाय* शब्द व्यवहृत हुआ है। *शिपि* का अर्थ है “यज्ञाग्नि की ज्वाला।” यदि यज्ञ-अग्नि की ज्वाला में आहुतियाँ डाली जाती हैं, तो भगवान् विष्णु वहाँ ज्वाला के रूप में उपस्थित रहते हैं। इसीलिए विष्णु को *शिपिविष्ट* कहा गया है।

तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः ।

हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—उस अग्नि से; पुरुषः—पुरुष; उत्तस्थौ—प्रकट हुआ; हेम-माली—सोने का हार पहने; अमल-अम्बरः—श्वेत वस्त्रों में; हिरण्मयेन—सुनहले; पात्रेण—पात्र से; सिद्धम्—पकाया हुआ; आदाय—लाकर; पायसम्—खीर।

अग्नि में आहुति डालते ही, अग्निकुण्ड से सोने का हार पहने तथा श्वेत वस्त्र धारण किये

एक पुरुष प्रकट हुआ। वह एक स्वर्णपात्र में खीर लिये हुए था।

स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वाञ्जलिनीदनम् ।

अवघ्राय मुदा युक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; विप्र—ब्राह्मणों की; अनुमतः—अनुमति से; राजा—राजा; गृहीत्वा—लेकर; अञ्जलिना—अंजुली में; ओदनम्—खीर; अवघ्राय—सूँघ कर; मुदा—अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक; युक्तः—सहित; प्रादात्—प्रदान किया; पत्न्यै—अपनी पत्नी को; उदार-धीः—उदार हृदय।

राजा अत्यन्त उदार था। उसने पुरोहितों की अनुमति से उस खीर को अपनी अंजुली में ले लिया और फिर सूँघ कर उसका एक भाग अपनी पत्नी को दे दिया।

तात्पर्य : इस प्रसंग में *उदारधीः* शब्द सार्थक है। राजा की पत्नी सुनीथा यह आशीष ग्रहण करने की पात्र न थी तो भी राजा इतना उदार था कि बिना किसी हिचक के उसने यज्ञपुरुष से प्राप्त वह खीर रूपी प्रसाद अपनी पत्नी को दे दिया। प्रत्युत, सब कुछ भगवान् द्वारा पूर्वयोजित होता है। जैसाकि बाद के श्लोकों में बताया जाएगा, यह घटना राजा के लिए हितकर नहीं हुई। चूँकि राजा अत्यन्त उदार था, अतः इस जगत के प्रति उसकी विरक्ति बढ़ाने के लिए भगवान् ने चाहा कि उसकी रानी से एक क्रूर

पुत्र जन्म ले जिससे राजा को गृहत्याग करना ही पड़ेगा। जैसाकि कहा जा चुका है, भगवान् विष्णु कर्मियों की सारी इच्छाएँ पूरी करते हैं, किन्तु भक्त की इच्छा वे एक भिन्न विधि से पूरी करते हैं जिससे कि वह धीरे-धीरे उनके पास पहुँच सके। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* से भी होती है (*ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते*)। भगवान् भक्त को अवसर प्रदान करते हैं कि वह आगे प्रगति करता रहे जिससे वह वापस घर की अर्थात् भगवान् के धाम जा सके।

सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्य वै पत्युरादधे ।
गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; तत्—वह खीर; पुम्—सवनम्—जिससे पुत्र उत्पन्न होता है; राज्ञी—रानी; प्राश्य—खाकर; वै—निस्सन्देह; पत्युः—पति से; आदधे—धारण किया; गर्भम्—गर्भ; काले—उचित समय पर; उपावृत्ते—प्रकट हुआ; कुमारम्—पुत्र; सुषुवे—जन्म दिया; अप्रजा—सन्तानहीन।

यद्यपि रानी को कोई पुत्र न था, किन्तु पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति वाली उस खीर के खाने से, वह अपने पति के सहवास से गर्भवती हो गई और यथासमय उसने एक पुत्र को जन्म दिया।

तात्पर्य : दस प्रकार की शुद्धि-विधियों में *पुंसवन* भी एक है, जिसमें कुछ प्रसाद अथवा भगवान् विष्णु को प्रदत्त भोग के उच्छिष्ट को पत्नी को दिया जाता है, जिससे पति के द्वारा संभोग के पश्चात् वह गर्भ धारण कर सके।

स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः ।
अधर्मांशोद्धवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; बालः—बालक; एव—निश्चय ही; पुरुषः—नर; माता-महम्—नाना; अनुव्रतः—पालक, अनुगामी; अधर्म—अधर्म का; अंश—एक अंश से; उद्धवं—प्रकट, अवतीर्ण; मृत्युम्—मृत्यु; तेन—इससे; अभवत्—हुआ; अधार्मिकः—धर्म को न माननेवाला।

वह बालक अंशतः अधर्म के वंश में उत्पन्न था। उसका नाना साक्षात् मृत्यु था और वह बालक उसका अनुगामी बना और अत्यन्त अधार्मिक व्यक्ति बन गया।

तात्पर्य : बालक की माता सुनीथा साक्षात् मृत्यु की पुत्री थी। सामान्यतः पुत्री को पिता के गुण प्राप्त होते हैं और पुत्र को माता के। अतः इस नियमानुसार राजा अंग का पुत्र अपने नाना का अनुगामी हुआ। स्मृति शास्त्र के अनुसार बालक साधारणतः अपने मामा के घर के नियमों का अनुगामी होता है।

नराणां मातुलकर्म का अर्थ है कि बालक साधारण रूप से अपने मामा की तरह होगा। यदि मातृकुल भ्रष्ट या पापी है, तो बालक भी, भले ही उत्तम पिता से उत्पन्न हो, अपने मातृकुल्य का शिकार हो जाता है। अतः वैदिक सभ्यता के अनुसार विवाह के पूर्व लड़के तथा लड़की के कुलों का पूरा ब्यौरा लिया जाता है। यदि ज्योतिष गणना के अनुसार मेल सही बैठता है, तो ब्याह होता है। किन्तु कभी-कभी त्रुटि रह जाती है, जिससे परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि सुनीथा राजा अङ्ग के लिए बहुत अच्छी पत्नी न थी, क्योंकि वह साक्षात् मृत्यु की पुत्री जो थी। कभी-कभी भगवान् अपने भक्त को अभागी पत्नी दिलाते हैं जिससे पारिवारिक परिस्थितियों के कारण वह अपनी पत्नी तथा परिवार से ऊब कर उनसे विरक्त हो ले और धीरे-धीरे भक्ति की ओर उन्मुख हो सके। ऐसा लगता है कि भगवान् के विधान से ही पवित्र भक्त राजा अंग को सुनीथा जैसी भाग्यहीन पत्नी और बाद में वेन जैसा बुरा पुत्र प्राप्त हुआ। लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि उसे पारिवारिक बन्धन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त हो गई और उसने भगवान् के धाम जाने के लिए अपना घर-बार छोड़ दिया।

स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः ।

हन्त्यसाधुर्मृगादीनान्वेनोऽसावित्यरौजनः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

सः—वह, वेन नामक बालक; शरासनम्—अपना धनुष; उद्यम्य—लेकर; मृगयुः—शिकारी; वन-गोचरः—जंगल में जाकर; हन्ति—मारता था; असाधुः—अत्यन्त क्रूर होकर; मृगान्—मृगों को; दीनान्—दीन; वेनः—वेन; असौ—वह रहा, वह आया; इति—इस प्रकार; अरौत्—चिल्लाते; जनः—सभी लोग।

वह दुष्ट बालक धनुष-बाण चढ़ाकर जंगल में जाता और वृथा ही निर्दोष (दीन) हिरनों को मार डालता। ज्योंही वह आता कि सभी लोग चिल्ला उठते, “वह आया क्रूर वेन! वह आया क्रूर वेन!”

तात्पर्य : क्षत्रियों को जंगल में शिकार करने की छूट है, इसलिए कि वे वध करना सीखें, इसलिए नहीं कि खाने या अन्य कार्य के लिए पशुओं का वध करें। क्षत्रिय राजाओं को कभी-कभी अपने राज्य के अपराधी की गर्दन काट लेनी होती थी इसलिए क्षत्रियों को जंगल में शिकार खेलने की अनुमति थी। चूँकि अंग का पुत्र वेन बुरी माता से उत्पन्न था, अतः वह अत्यन्त क्रूर था। वह जंगल जाकर वृथा

ही पशुओं को मारता रहता। उसकी उपस्थिति से पड़ोस के निवासी भयभीत रहते और उसे देख कर पुकार उठते, “वेन आया, वेन आया!” इस प्रकार वह अपने जीवन के प्रारम्भ से प्रजा के लिए भयावह था।

आक्रीडे क्रीडतो बालान्वयस्यानतिदारुणः ।

प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

आक्रीडे—खेल के मैदान में; क्रीडतः—खेलता हुआ; बालान्—लड़के; वयस्यान्—अपनी उम्र के; अति-दारुणः—अत्यन्त क्रूर; प्रसह्य—बल से; निरनुक्रोशः—निर्दयतापूर्वक; पशु-मारम्—मानो पशु की हत्या कर रहा हो; अमारयत्—मारता था।

वह बालक ऐसा क्रूर था कि समवयस्क बालकों के साथ खेलते हुए उन्हें इतनी निर्दयता के

साथ मारता मानो वे बध किये जाने वाले पशु हों।

तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः ।

यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसे; विचक्ष्य—देख कर; खलम्—क्रूर; पुत्रम्—पुत्र को; शासनैः—दण्ड द्वारा; विविधैः—विविध प्रकार के; नृपः—राजा; यदा—जब; न—नहीं; शासितुम्—वश में करने के लिए; कल्पः—समर्थ; भृशम्—अत्यधिक; आसीत्—हो गया; सुदुर्मनाः—खिन्न।

अपने पुत्र वेन का क्रूर तथा निष्ठुर आचरण देख कर, राजा अंग ने उसे सुधारने के लिए तरह-तरह के दण्ड दिये, किन्तु वह उसे सन्मार्ग में न ला सका। वह इस प्रकार से अत्यधिक खिन्न रहने लगा।

प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः ।

कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

प्रायेण—सम्भवतः; अभ्यर्चितः—पूजा किया गया; देवः—भगवान्; ये—जो; अप्रजाः—पुत्रहीन; गृह-मेधिनः—गृहस्थ लोग; कद-अपत्य—बुरे पुत्र से; भृतम्—उत्पन्न; दुःखम्—दुख; ये—जो; न—नहीं; विन्दन्ति—कष्ट भोगते हैं; दुर्भरम्—असहनीय।

राजा ने मन में सोचा कि पुत्रहीन व्यक्ति निश्चय ही भाग्यशाली हैं। उन्होंने अवश्य ही पूर्वजन्मों में भगवान् की पूजा की होगी जिससे उन्हें किसी कुपुत्र द्वारा दिया गया असह्य दुख न उठाना पड़े।

यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महानृणाम् ।
यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनन्तकः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

यतः—कुपुत्र के कारण; पापीयसी—पापमय; कीर्तिः—यश; अधर्मः—अधर्म; च—भी; महान्—महान; नृणाम्—मनुष्यों का;
यतः—जिससे; विरोधः—झगड़ा; सर्वेषाम्—समस्त लोगों का; यतः—जिससे; आधिः—चिन्ता; अनन्तकः—अपार, असीम।

पापी पुत्र के कारण मनुष्य का यश मिट्टी में मिल जाता है। उसके अधार्मिक कृत्यों से घर में अधर्म और सबों में झगड़ा फैलता है। इससे केवल अन्तहीन तनाव ही उत्पन्न होता है।

तात्पर्य : कहा जाता है कि विवाहित दम्पति के पुत्र होना आवश्यक है, अन्यथा उनका पारिवारिक जीवन निरर्थक रहता है। किन्तु उत्तम गुणों से रहित पुत्र अंधी आँख के समान होता है। अंधी आँख देखने के लिए कोई काम नहीं आती, इससे केवल असह्य वेदना होती है। अतः ऐसे कुपुत्र को पाकर राजा अपने को अत्यन्त अभागा समझने लगा।

कस्तं प्रजापदेशं वै मोहबन्धनमात्मनः ।
पण्डितो बहु मन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; तम्—उसको; प्रजा-अपदेशम्—केवल नाम का पुत्र; वै—निश्चय ही; मोह—मोह का; बन्धनम्—बन्धन;
आत्मनः—आत्मा के लिए; पण्डितः—बुद्धिमान पुरुष; बहु मन्येत—सम्मान करेगा; यत्-अर्थाः—जिसके कारण; क्लेश-
दाः—कष्ट-कारक; गृहाः—घर।

ऐसा कौन समझदार और बुद्धिमान है, जो इस तरह का निकम्मा पुत्र चाहेगा? ऐसा पुत्र जीवात्मा के लिए मोह का बन्धनमात्र होता है और वह मनुष्य के घर को दुखी बनाता है।

कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ।
निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

कद्-अपत्यम्—कुपुत्र; वरम्—श्रेष्ठ; मन्ये—मैं सोचता हूँ; सत्-अपत्यात्—अच्छे पुत्र की अपेक्षा; शुचाम्—शोक का;
पदात्—साधन; निर्विद्येत—विरक्त हो जाता है; गृहात्—घर से; मर्त्यः—मरणशील मनुष्य; यत्—जिसके कारण; क्लेश-
निवहाः—नारकीय; गृहाः—घर।

तब राजा ने सोचा : सुपुत्र की अपेक्षा कुपुत्र ही अच्छा है, क्योंकि सुपुत्र से घर के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है, किन्तु कुपुत्र से नहीं। कुपुत्र घर को नरक बना देता है, जिससे बुद्धिमान

मनुष्य सरलता से अपने को अनासक्त कर लेता है।

तात्पर्य : राजा अपने भौतिक घर के प्रति लगाव और विरक्ति के रूप में सोचने लगा। प्रह्लाद महाराज के अनुसार भौतिक घर अंधकूप के समान है। यदि मनुष्य अंधे कुएँ में गिर जाता है, तो उसके लिए निकल पाना और जीवित रहना कठिन है। अतः प्रह्लाद महाराज ने सलाह दी है कि जितनी जल्दी हो सके मनुष्य इस घरेलू जीवन रूपी अंधकूप को त्याग कर जंगल में जाकर भगवान् की शरण ग्रहण कर ले। वैदिक सभ्यता के अनुसार वानप्रस्थ तथा संन्यास में गृहत्याग अनिवार्य है। किन्तु लोग गृह के प्रति इतने आसक्त रहते हैं कि वे अन्त समय तक भी गृहस्थ-जीवन को नहीं छोड़ना चाहते। अतः राजा अंग ने विरक्ति को ध्यान में रखते हुए कुपुत्र को गृहस्थ-जीवन से विरक्ति के लिए प्रेरणाप्रद मान लिया। वह कुपुत्र को अपना मित्र मानने लगा, क्योंकि वह घर से विरक्ति में राजा का सहायक हो रहा था। अन्ततः प्रत्येक मनुष्य को सीखना पड़ता है कि गृहस्थ जीवन से कैसे विरक्त हुआ जाये, अतः यदि कुपुत्र अपने बुरे आचरण के द्वारा गृहस्थ के गृहत्याग में सहायक बनता है, तो यह वरदान है।

एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहा-
 त्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ।
 अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभि-
 र्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सः—वह; निर्विण्ण-मनाः—उदास मन; नृपः—राजा अंग; गृहात्—घर से; निशीथे—अर्द्धरात्रि में; उत्थाय—उठकर; महा-उदय-उदयात्—महापुरुषों के आशीर्वाद से ऐश्वर्ययुक्त; अलब्ध-निद्रः—बिना नींद के; अनुपलक्षितः—बिना दिखे; नृभिः—मनुष्यों के द्वारा; हित्वा—त्याग कर; गतः—चला गया; वेन-सुवम्—वेन की माता को; प्रसुप्ताम्—गहरी निद्रा में मग्न।

इस प्रकार से सोचते हुए राजा अंग को रात भर नींद नहीं आई। वह गृहस्थ जीवन से पूर्णतः उदास हो गया। अतः एक दिन अर्द्धरात्रि में वह अपने बिस्तर से उठा और वेन की माता (अपनी पत्नी) को गहरी निद्रा में सोते हुए छोड़कर चला गया। उसने अपने महान् ऐश्वर्यमय राज्य का मोह त्याग दिया और चुपके से अपना घर तथा ऐश्वर्य छोड़कर जंगल की ओर चला गया।

तात्पर्य : इस श्लोक में आगत महोदयोदयात् शब्द सूचित करता है कि महान् पुरुषों के आशीर्वाद से मनुष्य भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है, किन्तु जब वह भौतिक सम्पत्ति के प्रति अपनी आसक्ति

को छोड़ता है, तो इसे महापुरुषों के आशीर्वाद से भी बड़ा मानना चाहिए। राजा के लिए अपना ऐश्वर्यमय राज्य तथा तरुणी आज्ञाकारिणी पत्नी को त्याग पाना आसान नहीं था, किन्तु उसे भगवान् की कृपा ही कहेंगे कि वह आसक्ति से रहित होकर बिना किसी के देखे जंगल को चला गया। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब महापुरुष अर्धरात्रि में अपनी पत्नी तथा धन त्याग कर घर छोड़ देते हैं।

विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः

पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ।

विचिक्व्युर्व्यामतिशोककातरा

यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

विज्ञाय—जानकर; निर्विद्य—उदास; गतम्—चला गया; पतिम्—राजा; प्रजाः—समस्त नागरिक; पुरोहित—पुरोहित; आमात्य—मंत्री; सुहृत्—मित्र; गण-आदयः—तथा सामान्यजन; विचिक्व्युः—खोजने लगे; उर्व्याम्—पृथ्वी पर; अति-शोक-कातराः—अत्यन्त दुखी होकर; यथा—जिस प्रकार; निगूढम्—छिपा हुआ; पुरुषम्—परमात्मा को; कु-योगिनः—अनुभवहीन योगी।

जब यह पता चला कि राजा ने उदास होकर गृहत्याग कर दिया है, तो समस्त नागरिक, पुरोहित, मंत्री, मित्र तथा सामान्यजन अत्यन्त दुखी हुए। वे सर्वत्र उसकी खोज करने लगे जैसे कोई अनुभवहीन योगी अपने भीतर परमात्मा की खोज करता है।

तात्पर्य : यहाँ पर अनुभवहीन योगी द्वारा अपने भीतर परमात्मा की खोज करने का उदाहरण अत्यन्त शिक्षाप्रद है। परम सत्य को तीन प्रकार से जाना जाता है—निर्गुण ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा भगवान्। ऐसे अनुभवहीन योगी (कुयोगिनः) चिन्तन द्वारा निर्गुण ब्रह्म तक पहुँच पाते हैं, किन्तु प्रत्येक जीवात्मा में स्थित परमात्मा को नहीं ढूँढ पाते। जब राजा ने घर छोड़ दिया तो यह निश्चित था कि वह अन्यत्र कहीं ठहरा होगा, किन्तु नागरिकों को पता न था कि उसकी खोज कैसे की जाये, इसलिए वे अनुभवहीन योगियों की तरह क्षुब्ध थे।

अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापते-

हंतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ।

ऋषीन्समेतानभिवन्द्य साश्रवो

न्यवेदयन्पौरव भर्तृविप्लवम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

अलक्षयन्तः—न पाकर; पदवीम्—कोई चिह्न, पता; प्रजापतेः—राजा अंग का; हत-उद्यमाः—निराश होकर; प्रत्युपसृत्य—लौटकर; ते—वे नागरिक; पुरीम्—नगर को; ऋषीन्—ऋषि; समेतान्—एकत्रित; अभिवन्द्य—नमस्कार करके; स-अश्रवः—आँखों में आँसू भर कर; न्यवेदयन्—सूचित किया, निवेदन किया; पौरव—हे विदुर; भर्तृ—राजा की; विप्लवम्—अनुपस्थिति।

जब सर्वत्र खोज करने पर नागरिकों को राजा का कोई पता न चला तो वे अत्यधिक निराश हुए और नगर को लौट आये, जहाँ पर राजा की अनुपस्थिति के कारण देश के समस्त बड़े-बड़े ऋषि एकत्र हुए थे। अश्रुपूरित नागरिकों ने ऋषियों को नमस्कार किया और विस्तारपूर्वक बताया कि वे कहीं भी राजा को नहीं पा सके।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के अन्तर्गत 'ध्रुव महाराज के वंशजों का वर्णन' नामक तेरहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।